# श्रमण भगवान महावीर

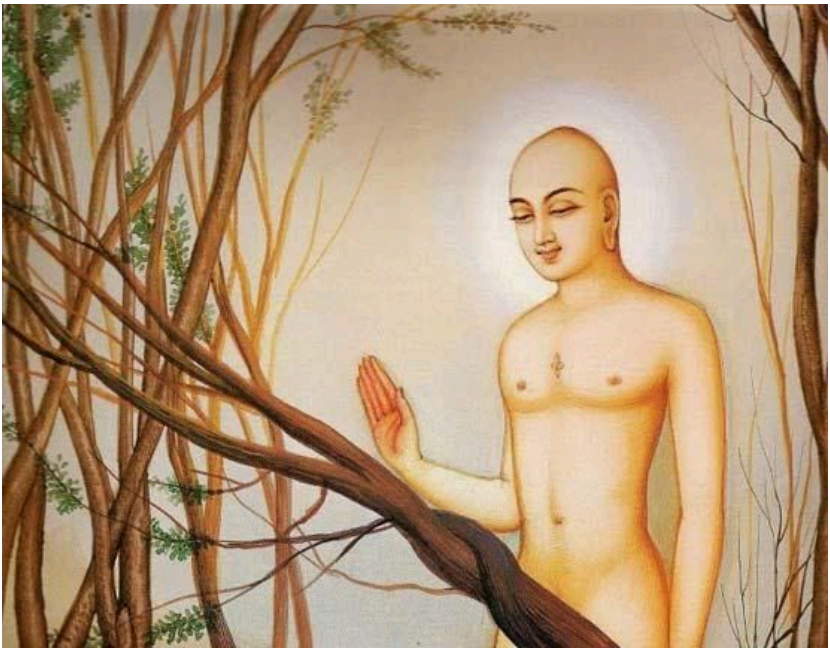

आओ महावीर को जाने, महावीर को पहचाने और महावीर को स्वीकारें । यही है ज्ञान दर्शन और चारित्र। महावीर कल्याणक दिवस दिवाली के समय एक बार आवश्य पढ़ें और अन्तर्मन में दिवाली मनाएं।... जय महावीर -स्वतन्त्र जैन जालन्धर

## श्रमण भगवान महावीर

### नयसार कौन था ?

जीव अनन्तकाल से भव भ्रमण करता हुआ चौरासी के चक्र में फंसा रहता है। जब पुण्य उदय हो तो मनुष्य जन्म लेकर कुछ करुणामय भावना से अपने जीवन को सफल बनाने मे कार्य करता है, जो ऐतिहासिक हो जाते हैं। ऐसे ही श्रमण भगवान महावीर का जीव करोड़ों वर्ष पहले नयसार के भव में प्रतिष्ठानपुर के राजा के आदेश से वन में लकड़ियों के लिए गया हुआ था। जब मध्यान्ह में काम के पश्चात खाने ही बैठा था कि उस समय वन में मार्गच्युत कोई तपस्वी मुनि उसे दृष्टिगोचर हुए। उसने भूख-प्यास से उस पीड़ित मुनि को भक्ति पूर्वक निर्दोष आहार दिया और उसे गांव का सही मार्ग बतलाया । मुनि ने भी नयसार को उपदेश देकर आत्मकल्याण का मार्ग समझाया। फलस्वरूप नयसार ने सम्यक्त्व प्राप्त कर भव भ्रमण को परिमित कर लिया। जैन धर्म यह नहीं मानता कि कोई तीर्थंकर या महापुरुष ईश्वर का अंश होकर अवतार लेता है । जैन सिद्धांत में प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की योग्यता है। विशिष्ट रुप से अपने पूर्व जन्म के कर्मों को क्षय कर पुनः मानव जन्म लेकर तीर्थंकर के रूप में जन्म होता है। यहाँ से श्रमण भगवान महावीर की तीर्थंकर बनने की यात्रा आरम्भ होती है। परन्तु पूर्व भवों के अष्टकर्म को क्षय करने में भी बार-बार भव भ्रमण करना पड़ा, श्वेताम्बर परम्परा विशेष 27 भव मानती है, जबकि दिगम्बर परम्परा 33 भव मानती है। वास्तव मे सब भवों की समानता है परन्तु दिगम्बर परम्परा से कईं भव आगे-पीछे दृष्टिगोचर होते हैं।

**श्रमण भगवान महावीर के पूर्व भव यात्रा**

नयसार के भव में आयु पूर्ण कर दूसरे भव में सौधर्म कल्प में देव हुए।

तीसरे भव में भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत-पुत्र मरीचि हुए। भगवान ऋषभदेव के आगे दीक्षित होकर, कठिन संयम से विचलित होकर अलग ही साधना करने लगे। जब महाराज भरत भगवान ऋषभदेव के दर्शन करने गये तो श्री भरत ने भगवान ऋषभदेव से प्रश्न किया कि आपके सिद्धांत का अन्तिम अधिकारी कौन होगा, तो भगवान ऋषभदेव ने कहा- बाहर जो बैठा है मरीचि वह अन्तिम चौबीसवां तीर्थकर होगा। महाराज भरत में मरीचि को बतला दिया। कुछ अहमं हुआ परन्तु जो कोई दर्शन करने आता था तो उनको मरीचि यही कहता था कि वन्दनीय तो भगवान ऋषभदेव ही हैं। वहाँ से आयु पूर्ण कर चौथे भव में ब्रह्मलोक में देव हुए। पांचवे भव में कौशिक ब्राह्मण, छठे भव में पुष्यमित्र ब्राह्मण, फिर सातवें भव में सौधर्म देव और आठवें मे अग्निद्योत। नौवें भव में द्वितीय कल्प में देव, दशवें भव में अग्निभूति ब्राह्मण, ग्यारहवे भव में सनत्व कुमार, बारहवें भव मे भरद्वाज, तेहरवें भव में महेन्द्र कल्प का देव, चोदहवे भव में स्थावर ब्राह्मण, पन्द्हवें मे ब्रह्मदेव कल्प में देव, सोलहवें भव में युवराज विशाखभूति का पुत्र विश्वभूति, संसार की कपट लीला देखकर विरक्ति हो गई और मुनि बनकर उन्होने घोर तपस्या की और अन्त में अपरिमित बलशाली बनने का निदान कर लिया। सत्रहवें भव में मे महाशुक्र देव में आयु पूर्ण कर अठारवें भव में त्रिपृष्ठ वासुदेव के रूप में जन्म लिया।

इस भव में वासुदेव के पिता प्रजापति के पास प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव का सन्देश आया कि शाली क्षेत्र में शेर के उपद्रवों से कृषकों की रक्षा के लिए उनकों यहाँ आना

चाहिए, वे तैयार हो गये चलने को कि त्रिपृष्ठ वासुदेव ने कहा-"पिता जी! हम लोगों के होते हुए आपको कष्ट सहने की आवश्यकता नहीं। उस शेर के लिए तो हम बच्चे ही पर्याप्त है । महाराज की आज्ञा लेकर उपद्रव स्थान पर पहुँचे जो इनका रथवान था वह भी गौतमस्वामी गणधर का जीव पूर्व भव में था। खेत के रखवालों से बोले- कब तक यहाँ रहना होगा। कृषक जब तक धान नहीं पक जाता तब तक आप अपनी सेना सहित हमारी रक्षा करें। इतने समय तक यहाँ कौन रहेगा, त्रिपृष्ठ ने शेर की गुफा पुछी और उधर चल दिया और शेर को ललकारा। शेर भी उठा और भयंकर दहाड़ करता हुआ बाहर आया।" उत्तम पुरुष होने के कारण त्रिपृष्ट ने सोचा, मैं तो रथरूढ़ हूँ और सशस्त्रों से सुस्सजित हूँ, इस पर आक्रमण करूँ, यह कहां का न्याय है, मुझे रथ से नीचे उतर कर बराबरी करनी है, रथ से नीचे उतर कर शस्त्र फैंक कर मुकाबला करना शुरु कर दिया और शेर के जबाड़े को पकड़ कर जीर्ण वस्त्र की तरह शेर को चीर डाला, जब शेर अन्तिम साँस ले रहा था तो रथवान ने शेर को ढ़ांढ़स बंधवाया कि शेर का शेर से ही मुकाबला है, तुम जंगल के शेर हो और वह नगर के शेर हैं।

अश्वग्रीव ने जब त्रिपृष्ट के अद्भुत शोर्य की कहानी सुनी तो उसे बहुत ईर्ष्या हुई, त्रिपृष्ट को अपने पास बुलाकर उस पर आक्रमण कर दिया, जमकर युद्ध हुआ। त्रिपृष्ठ की शक्ति के आगे अश्वग्रीव के सब शस्त्र निस्तेज हो गये कि उसने अपना चक्र-रत्न अपनाया, किन्तु त्रिपृष्ठ ने चक्र-रत्न को पकड़ कर उसी से अश्वग्रीव का सिर काट डाला और प्रथम वासुदेव बने।

एक दिन त्रिपृष्ट के राजमहल में कुछ संगीतज्ञ आए, अपने मधुर संगीत से श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध कर दिया। राजा ने शैय्यापालकों को कहा- जब मुझे निन्द्रा आ जाए तो संगीत बन्द करवा देना। परन्तु शैय्यापालक मधुर संगीत में इतने व्यस्त हो गये कि संगीत को बन्द नहीं करा सके। जब राजा की नींद भंग हुई तो संगीत चल रहा था, तो शैय्यापालक से बोले-संगीत क्यों नहीं बन्द करवाया, शैय्यापालक-" महाराज! मीठे संगीत के कारण, संगीत को नहीं रोका।" महाराज ने शैय्यापालक के कानों में गर्म शीशा डलवाया। इस घोर कृत्य कारण से निकाचित कर्म बन्ध किया और आयु पूर्ण कर सप्तम नरक में नेरइया रुप में उत्पन्न हुआ। जो उन्नीसवां भव था। बीसवें भव में सिंह के रूप में और इक्सीवां भव चतुर्थ नरक में व्यतीत किया। अनेक भव भ्रमण करते हुए पहले नरक में आयु पूर्ण कर बाईसवें भव में प्रियमित्र चक्रवर्ती होकर दीर्घकाल तक शासन करने के उपरान्त पोट्टिलाचार्य के पास संयम स्वीकार किया और करोड वर्ष तक संयम साधना की। तेईसवें भव मे महाशुक्र कल्प में देव हुए। चौबीसवें भव में नन्दन राजा के भव में तीर्थंकर गोत्र का बन्ध किया- राजसी वैभव छोड़कर संयम ग्रहण किया। चौबीस लाख वर्ष तक इन्होंने संसार मे भोग-विलास जीवन बिताया और एक लाख वर्ष तक संयम पर्याय में निरन्तर मास-मास की तपस्या करते रहे। पारणा काल केवल तीन हजार तीन सौ तैतीस दिन किया अन्तिम दो मास का अनशन कर समाधिमरण में आयु पूर्ण की। पच्चीसवें भव में पुष्पोत्तर विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए। वहाँ से च्यव कर ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या जालन्धर गोत्रीय ब्राह्मणी के

गर्भ में आये, तब इन्द्र महाराज ने अवधिज्ञान से देखा कि भरतक्षेत्र में भगवान अवतारित हो गये हैं तो अपने सिंहासन से नीचे उतरकर तीन बार वन्दना की इसे छब्बीसवां भव माना जाता है। इन्द्र महाराज ने देखा चक्रवर्ती, बलदेव,वासुदेव एवं तीर्थंकर सदा उग्रकुल में ही जन्म लेते हैं। तब ब्यासी रात्री देवनन्दा की कुक्षी मे व्यतीत हो चुकी थी, कि हरिणैगमेषी देव को बुलाया और महावीर के जीव को महाराज सिद्धार्थ की पत्नी त्रिशला के गर्भ में साहरण करने का आदेश दिया। उस समय महावीर का जीव तीन ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान) धारक था। माता त्रिशला को चौदह स्वप्न का अनुभव हुआ और महाराज सिद्धार्थ ने कहा- अति उत्तम, शूरवीर बालक को जन्म देगी। चारों तरफ वृद्धि होने लगी, नगर में मंगलमय वातावरण और कृषकों के खेतों में उपज में भी वृद्धि हुई। एक दिन महावीर के जीव ने विचार किया कि मेरे हिलने-जुलने से माता को पीड़ा होती होगी, तब अपनी शरीर स्थिर कर लिया, माता त्रिशला को चिन्ता हो गई, जब महावीर के जीव ने देखा माता चिन्ताग्रस्त हो गई कि उनके गर्भ का हरण हो गया है, - समस्त राजभवन में अमोद-प्रमोद एवं मंगलमय कार्यक्रम चिन्ताग्रस्त हो गये। तो फिर महावीर ने अवधिज्ञान द्वारा माँ की यह करूणावस्था और राजभवन में विषादमयी स्थिति देखी तो फिर से अपने अंगोपांग हिलाने आरम्भ कर दिये जिससे माँ की प्रसन्नता से सारा राजभवन हर्षोल्लास का वातावरण छा गया। यह भाव देखकर महावीर के जीव ने गर्भकाल में ही अभिग्रह धारण कर लिया," जब तक माता-पिता जीवित रहेंगे, तब तक मैं मुंढित होकर दीक्षा ग्रहण नहीं करूँगा।"

भगवान महावीर का जन्म समय ईसा पूर्व छठी शताब्दी माना गया है, उस समय विश्व में सांस्कृतिक एवं धार्मिक इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जब भारत में भगवान महावीर और समकालीन महात्मा बुद्ध ने अहिंसा का उपदेश दिया एवं सास्कृतिक क्रान्ति का सूत्रपात किया, उसी समय चीन मे लाओत्से और कांग्फ्यूत्सी, युनान में पाइथोगोरस, अफलातून और सुकरात, ईरान में जरत्थुष्ट, फिलिस्तीन में जिरेमियाँ और इर्जाकेल आदि महापुरुष अपने-अपने क्षेत्र में धार्मिक एव सांस्कृतिक क्रान्ति के सूत्रधार बने।

प्रशस्त दोहद और मंगलमय वातावरण में गर्भकाल पूर्ण होने पर नौ  मास और साढ़े सात दिन बीतने पर चेत्र शुक्ला त्रियोदशी को मध्यरात्रि में उत्तराफाल्हुणी नक्षत्र में अवतारित हुए। उस समय सभी ग्रह उच्च स्थान पर थे। भगवान का जन्म होते ही 56 देवकुमारियों और 64 देवेन्द्रों के आसन दोलायमान हुए। अवधिज्ञान से जब उन्हें ज्ञात हुआ कि जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म हुआ है, तो सभी प्रभु का जन्म-मोहत्सव मनाने कुण्डलपुर में आए।

महाराज सिद्धार्थ ने पुत्र के जन्म पर समस्त बन्दियों को मुक्त कर दिया और याचकों एवं सेवकों को प्रीतिदान दिया। दस दिन तक नगर एवं राजमहल में जन्म महोत्सव मनाया गया। दस दिन के बाद महाराज सिद्धार्थ ने अपने मित्रों, बन्धुजनों को आमन्त्रित कर  भोज्य पदार्थों से स्वागत सत्कार किया- और कहा- जब से बालक आया है चहूँ ओर वृद्धि का समाचार मिल रहा है, इसलिए वर्द्धमान नाम उचित है, सब ने समर्थन किया ।

भगवान का लालन-पालन के लिए पाँच सयोग्य धाय माताओं कि नियुक्ति की गई, शुक्ल पक्ष द्वितीय के चन्द्र के समान निर्विघ्न अभिवर्द्धित होने लगा। बाल क्रीड़ा में मनोरंजक ही नहीं बलक्रीड़ा भी होती थी, साहस और निर्भयता में आपकी तुलना करने वाला कोई नहीं था। तीर्थंकर का अतुल बल देखने एक देव बालक बन कर इन में खेलने आ गया। सब बच्चे घोड़ा-घोड़ी खेलते थे कि देव ने कहा- पहले मैं घोड़ी बनता हूं, सब मान गये, सब बच्चों ने छलांगे लगाई, कहने लगे बड़ा मज़ा आया घोड़ी लिफ्ती ही नहीं, जब वर्द्धमान ने छलांग लगाई तो देव अपने रूप में आकर हवा में उड़ने लगा। बालक घबराकर दौड़े, सारे नगर में हा-हाकार मच गया, सेना तलाश करने लगी, सब के हाथों में हथियार थे, वर्द्धमान हवा में नजारा देख रहा है, जब देखा नगर में कोलाहल मचा हुआ है, तब देव पर मुष्टी प्रहार किया कि देवता सहम गया, वर्द्धमान कहने लगा मुझे महल मे ले चलो। देव- वहाँ मुझे सब मार देंगे। वर्द्धमान नहीं कोई तुम पर प्रहार नहीं करेगा, तुम मेरे अतिथी हो। देव महल में आया, सब उस देव को मारने के लिए दौड़े-वर्द्धमान- कोई कुछ नहीं कहेगा, यह मेरा मेहमान है, तब देव ने कहा- तुम वीर ही नहीं महावीर हो और देव प्रस्थान कर गया।

## यशोदा से विवाह

बाल्यकाल पूर्ण कर जब वर्द्धमान युवावस्था में आये तब राजा सिद्धार्थ एवं माता त्रिशला ने वर्द्धमान के मित्रों के माध्यम से उनके सन्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा। राजकुमार भोग-जीवन जीना नहीं चाहते थे। विरोध भी

किया परन्तु माता-पिता को दुःख न हो, इसलिए दीक्षा का उत्सुक होते हुए भी दीक्षा नहीं ले रहा हूँ । तभी माता त्रिशला वहाँ आ पहुँची और कहने लगी, " वर्द्धमान ! मैं जानती हूं कि तुम भोगों से विरक्त हो, फिर भी हमारी प्रबल इच्छा है कि तुम एक-बार राज-कन्या से पाणिग्रहण करो ।" अन्ततोगत्वा माता-पिता के आगे झुकना पड़ा, या यूँ कहिए कि भोग-कर्म तीर्थंकर को भी नहीं छोड़ते। परन्तु दिगम्बर परम्परा ऐसा नहीं मानती। माता-पिता को प्रसन्न करने के लिए वर्द्धमान को विवाह-बन्धन में बंधना पड़ा ।

## माता-पिता का स्वर्गवास

राजसी भोग के अनुकूल साधन पाकर भी ज्ञानवान् महावीर उनसे अलिप्त रहा। उनके संसार-वास का प्रमुख कारण था कृतकर्म का उदयभोग और माता-पिता का अतुल स्नेह । भगवान के माता-पिता भगवान पार्श्वनाथ के श्रमणोपासक थे। उन्होंने अन्तिम समय निकट देखकर आत्मा की शुद्धि के लिए अर्हत, सिद्ध एवं आत्मा की साक्षी से कृत पाप के लिए प्रायश्चित कर दोष-मुक्त होकर संथारा ग्रहण किया और शरीर त्याग कर बाहरवें देवलोक में देव रूप उत्पन्न हुए, वहाँ से आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होंगे और सिद्धि प्राप्त करेंगे।

## त्याग की ओर

माता-पिता के देव गमन के पश्चात महावीर की गर्भकालीन प्रतीज्ञा पूर्ण होने पर अपने ज्येष्ठ भ्राता नन्दीनवर्द्धन एवं समस्त बन्धुजनों के आगे अपनी भावना व्यक्त की। नन्दीनवर्धन यह बात सुनकर बहुत दुःखी हुए और कहने लगे,

" भाई! अभी माता-पिता के वियोग का दुःख हम भूल नहीं पाये, कि तुम प्रवज्या की आज्ञा मांगते हो । मेरे घाव पर नमक छिड़क रहे हो। कुछ काल के लिए ठहरो, फिर प्रवज्या ग्रहण कर लेना।" महावीर कब तक मुझे ठहरना होगा। नन्दीनवर्धन कम से कम दो वर्ष तक तो ठहरना चाहिए। महावीर ने सब की बात मान ली और कहा- इस अवधि में मैं आहारादि अपनी इच्छानुसार करूँगाँ । सब ने यह बात मान ली। इस प्रकार भगवान ने एक वर्ष वैराग्य की साधना कर वर्षीदान प्रारम्भ कर दिया। प्रति दिन एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान करते रहे।

तीस वर्ष की आयु होने पर महावीर की भावना सफल हुई, उस समय लोकान्तिक देवों ने आकर महवीर से निवेदन किया-"भगवन् ! मुनि दीक्षा ग्रहण कर समस्त जीवों के हितार्थ धर्मतीर्थ का प्रवर्तन कीजिए ।" भगवान ने भी अपने ज्येष्ठ भ्राता नन्दीनवर्धन और चाचा सुपार्श्व आदि से आज्ञा प्राप्त कर विजय महूर्त और उत्तर फाल्गुणी नक्षत्र निर्जल बेले की तपस्या से प्रभु ने दीक्षा ग्रहण की। आज से समपूर्ण सावद्यकर्म का तीन करण और तीन योग से त्याग करता हूँ। दीक्षा ग्रहण करते ही भगवान को मनःपर्यवज्ञान हो गया।

**कठिन तपस्या और उपसर्ग**

भगवान ने संकल्प किया जब तक मुझे केवलज्ञान नहीं होता, तब तक मैं देह की ममता छोड़ कर रहूँगा। प्रथम उपसर्ग जब भगवान ध्यानस्थ खड़े थे, उस समय एक ग्वाला अपने बैलों सहित आया। महावीर के पास ही बैलों को चरने के लिए छोड़ दिया और आप कहीं चला गया, पशु स्वभाव से इधर-उधर हो गये, जब वापिस आया तो बैल

गायब थे। महावीर से पूछने लगा-हमारे बैल कहाँ गये ? ध्यानस्थ महावीर ने कोई उत्तर नहीं दिया। उस ग्वाले ने काँस नामक घास की शलाकाएं कान में और पत्थर से ठोंक दी, भगवान को अति वेदना होने पर भी इस वेदना को पूर्व संचित कर्म का फल समझ कर शान्त और प्रसन्न मुद्रा में सहते रहे। यह ग्वाला वही पूर्व भव का शैय्यपालक था जिस के कानों मे  गर्म शीशा डलवाया था।

**अस्थिग्राम में यक्ष का उपद्रव**

विहार करते समय भगवान अस्थिग्राम की ओर चल पड़े। रात्रि में अन्धकार होने के पश्चात भगवान ध्यानस्थ को देखकर  यक्ष प्रकट हुआ और उसने भयंकर अट्टहास किया, जिससे सारा वन प्रदेश काँप गया परन्तु भगवान सुमेरू के समान अडिग रहे। यक्ष ने अनेकों वेदना, कभी हाथी बनकर, कभी सांप बनकर, कभी भगवान के नाक,कान और आँखों पर भयंकर वेदना दी परन्तु भगवान ने सभी कष्टों को शान्त भाव से सहन कर लिया, अन्त में यक्ष प्रभु के चरणों में गिर पढ़ा और क्षमा याचना करते हुए लौट गया।

**सिद्धार्थ व्यन्तरदेव**

सिद्धार्थ व्यन्तरदेव ने अच्छंदक द्वारा किये गये अनेक गुप्त पापों को प्रकट कर दिया, जिसे लोगों ने सत्य समझ लिया. अन्त में सारे पापों की कलई खुल गई और सिद्धार्थ व्यन्तरदेव का प्रभाव समाप्त हो गया और भगवान के उज्ज्वल तप से प्रभावित भगवान की सेवा मे आने लगे।

**चन्डकौशिक को प्रतिबोध**

चन्ड़कौशिक सर्प अपने पूर्व भव मे तपस्वी था। एक दिन तप के पारणे के दिन अपने शिष्य के साथ भिक्षार्थ गया। भिक्षार्थ भ्रमण करते समय तपस्वी मुनि के पांव के नीचे एक मेंढ़की दब गई। यह देखकर शिष्य ने कहा- " गुरुदेव! आपके पांव के नीचे मेंढ़की दब गई है, और वहाँ एक दूसरी मेढ़कीं भी मरी पड़ी थी, तब तपस्वी ने अपने शिष्य को कहा-कि इसको भी मैं ने मारा है।" शिष्य ने सायंकाल प्रतिक्रमण के समय कहा-" गुरुदेव ! मेढ़की आपके पांव नीचे आ गई थी आप आलोचना कीजिए।"

इस पर क्रुद्ध होकर तपस्वी अपने शिष्य को मारने के लिए उठे, क्रोधावेश में वह एक स्तम्भ से टकरा गये जिससे उसी समय उनका प्राणान्त हो गया और ज्योतिष जाति के देव हुए। वहाँ से च्यव कर तापसों के कुलपति की पत्नी की कुक्षी में उत्पन्न हुए और उसका नामकरण हुआ चण्डकौशिक। चन्ड़कौशिक उस आश्रम का कुलपति बन गया और जो भी कोई वहाँ आता था उसको मार-पीट कर भगा देता था। एक बार वह कुमारों को पीटने के लिए दौड़ा कि गड्डे में गिर गया और मर कर दृष्टिविष सर्प के रूप वन मे उत्पन्न हुआ। अति भयानक सर्प होने के कारण कईं उसके प्रकोप से मर गये। वहाँ पक्षी तक नहीं फड़कते थे। भगवान महावीर उस वन मे पधार गये। मन में कोई भय नहीं था केवल चन्ड़कौशिक का उद्धार उनके मन में था। चन्ड़कौशिक चकित हो भगवान महावीर की सौम्य, शान्त और मोहक मुखमुद्रा को देखता रहा।

चन्ड़कौशिक को शान्त देखकर महावीर ध्यान से निवृत्त होकर बोले," चन्ड़कौशिक ! शान्त हो, जागृत हो, अज्ञान में कहाँ भटक रहा है ? पूर्व जन्मों के दुष्कर्मों के कारण तुम्हें

सर्प बनना पड़ा, अब भी सम्भलो तो भविष्य नहीं बिगड़ेगा।"
भगवान के इस सुधारस वचनों को सुनकर चन्ड़कौशिक जागृत हुआ, मन में विवेक की ज्योति जल उठी। पूर्व जन्मों की चन्ड़कौशिक की घटनाएं सब उसके सामने आने लगी। वह अपने कृत कर्मों का प्रायश्चित करने लगा, अब मैं किसी को भी सताऊँगा नहीं। सर्प ने बिल में मुँह डालकर पड़ गया, लोग उसको पत्थर मारने लगे परन्तु वह समता भाव से स्थिर अपना क्रोध क्षमा में बदल रहा था। महावीर की अपार कृपा से चन्ड़कौशिक का उद्धार हो गया।

## गोशालक का प्रभु-सेवा में आगमन

भगवान विहार करते हुए राजगृह नालन्दा नगर पधारे गोशालक भी वर्षावास हेतु वहाँ आया हुआ था। भगवान के कठिन तप को देखकर आकर्षित हुआ, भगवान के प्रथम मासखमण का पारणा था, उस समय पंच-दिव्य प्रकट हुए, आकाश मे देव-दुन्दभि बजी। गोशालक ने भगवान की महिमा देखी तो भगवान के साथ हो लिया। भगवान महावीर इस वर्षावास में तीन मास-मास का तप करते रहे और पारणा विजय सेठ, आनन्द श्रावक और सुनन्द गाथापति के हुए। एक दिन गोशालक ने पूछा-भगवन मुझे आज आहार मे क्या मिलेगा, भगवन्-खट्टी छाछ, बासी रोटी और खोटा सिक्का । गोशालक ने प्रभु महावीर की वाणी को असत्य सिद्ध करने के उद्देशय से बड़े-बड़े श्रावकों के घर गया परन्तु आहार नहीं मिला आखिर एक लुहार के घर से खट्टी छाछ, बासी रोटी और

खोटा सिक्का मिला । गोशालक इसे नियतिवाद मानने लगा। गोशालक महावीर के साथ छः वर्ष तक रहा।

दूसरे वर्ष भगवान के साथ विहार कर रहा था कि मार्ग में ग्वाले खीर पकाते हुए मिले, तब गोशालक का मन मचल उठा और महावीर से कहने लगा-" भगवन् ! ठहरो खीर खा कर चलेंगे। महावीर ने कहा- खीर खाने को नहीं मिलेगी। हंडिया फूटने से खीर मिट्टी में मिल जाएगी।" भगवन आगे प्रयाण कर गये।

गोशालक नहीं माना, वहीं रूक गया, जब चावल उबाल होने लगे तो हंड़िया फूट गई और खीर मिट्टी में मिल गई। गोशालक नियतिवाद का पक्का समर्थक बन गया।

तीसरे वर्ष विहार कर भगवान चम्पा पधारे और वहीं तीसरा वर्षाकाल पूर्ण किया । दो-दो मास का उत्कट तप के साथ विविध ध्यानयोग की साधना की, अन्तिम दो मास तप का पारणा चम्पा के बाहर किया।

चतुर्थ वर्ष भगवान विहार कर कलाय सन्निवेश पधारे, वहाँ गोशालक के साथ एक सूने घर में ध्यानावस्थित हुए। गोशालक एक द्वार के पास छिप कर बैठ गया और वहाँ आई एक बन्धुमती नाम की दासी से हँसी-मजाक करने लगा। दासी ने गाँव जाकर मुखिया को बतलाया और गोशालक की पिटाई हुई। भगवान वहाँ एक शुन्य स्थान देखकर ध्यानारूढ़ हुए और गोशालक अपनी विकृत भावना और चंचलता के कारण जनसमुदाय के क्रोध का शिकार हुआ।

पंचम वर्ष भगवान सावत्थी पधारे और ध्यानावस्थित हो गये। कड़कड़ाती सर्दी पड़ रही थी, परवाह किये बिना भगवान ध्यान में मग्न रहे। गोशालक सर्दी नहीं

सह सका, जाड़े में ठिठुरता- सिसकता रहा। उधर देवालय में धार्मिक उत्सव में स्त्री-पुरुष नृत्य-गान में ताल्लीन का गोशालक ने उपहास किया जिससे वह वहाँ- से बाहर धकेला गया और युवकों द्वारा पीटा गया।

आवर्त से विहार कर प्रभु महावीर अनेक क्षेत्रों को अपने चरणरज से पवित्र करते हुए पहुँचे। वहाँ गोशालक को लोगों ने गुप्तचर समझा और पीटा गया और गोशालक के साथ महावीर को भी बन्दी बना दिया। कोकालहस्ती में भगवान के बड़े भाई मेघ के कुण्डलग्राम में देखा और पहचान गया उसने भगवान को मुक्त करवा दिया। महावीर ने सोचा कि अभी मैंने बहुत कर्म क्षय करने हैं यदि परिचित प्रदेश में रहा तो कर्म क्षय करने में विलम्ब हो जाएगा।

**अनार्य देश में उपसर्ग**

भगवान अनार्य देश में पधारे, वहाँ अनुकूल आवास भी प्राप्त नहीं हुआ, आहार भी रूखा-सुखा बासी भोजन ही मिलता, वहाँ के कुत्ते दूर से ही भगवान को देखकर काटने को दौड़ते, लोग वहाँ लाठी लेकर विचरण करते भगवान तो निर्भय थे, वह ऐसे प्राणियों से दुर्भाव नहीं रखते थे, क्योंकि शारीरिक ममता को शुद्ध मन से त्याग किया हुआ था कर्म-निर्जरा के हेतु समझकर। भयंकर अरण्य में ही रणवास करना पड़ता, कभी गाँव के निकट पहुँचते तो लोग मारने लग जाते। अन्य गाँव वाले दण्ड, मुष्टि , भाला, पत्थरो से प्रहार करते और अट्टहास करते, प्रभु महावीर मौन ही रह कर सहते। गोशालक ने कहा-आपके साथ मुझे कष्ट सहने पड़ते हैं, इसलिए अच्छा है कि अकेला ही विहार करूं यह छटा वर्ष था। सात, आठ, नौ दस, ग्यारह वर्ष तक भगवान महावीर अनेकों उपसर्ग सहते हुए मौन साधना में लीन रहे।

## संगमदेव के उपसर्ग

संगम देव डिगाने आया, चली न उसकी कोई माया महावीर सदा साहस के साथ परिषहो का स्वागत करते रहे, उन्हों ने शरीर को आराम देने के लिए न वस्त्र धारण किये *और* न ही पृथ्वी पर आसन बिछा कर शयनादि किया । दीक्षा लेते ही इन्द्र ने एक देवदूष्य वस्त्र दिया जो तेरह महीने तक उन के कन्धे पर पड़ा रहा, गर्मी व सरदी से निझात पाने के लिए कभी भी उसका उपयोग नहीं किया । भिक्षा भी वह कर-पात्र में ग्रहण करते थे उनके मन में मित्र के प्रति न राग था न कभी शत्रु के प्रति विद्वेष । उनके जीवन के कण-कण में मैत्री भाव की सरिता प्रवाहमान थी । महावीर के अनुपम धैर्य के सामने देवराज इन्द्र भी नतमस्तक था उस ने स्वर्ग से वन्दन किया और गुणगाण करने लगे । इन्द्र ने उपस्थित देवों के सामने महावीर की कठोर साधना, आदर्श क्षमा एवं सहनशीलता का एक शब्दचित्र उपस्थित किया । सब ने इन्द्र से भगवान की प्रशस्ति सुनी और वही से वन्दना कर श्रद्धा व्यक्त की । किन्तु वहाँ उपस्थित सङ्गम को अच्छा नहीं लगा क्रुद्ध होकर कहने लगा देवसभा में मानस की प्रशंसा देवों का अपमान है क्या हाड-मांस का पुतला मानव देवों को पूज्यनीय हो सकता है । कहां जरा मरण से घिरा हुआ, क्षुधा पिपासा से सन्तप्त क्षुद्र मानव और कहां अजर- अमर एवं संकल्प सिद्धि वाला देव । महामहिम देवों के सामने एक मानव की प्रशंसा । इन्द्र ने राई का पहाड़ बना दिया, मैं पहाड़ को राई बना कर दम लूंगा उसी समय भयंकर विस्फोट करता हआ संगम पृथ्वी पर आया । उस समय महायोगी महावीर मलेच्छ भूमि पर विचरण कर रहे थे । दृढ़भूमि प्रदेश के पेडाल गाँव के बाहर

पौलास चैत्य में महाप्रतिमा तप स्वीकार करके ध्यानस्थ खड़े थे । एक सूखे पदार्थ पर उनकी दृष्टि स्थिर थी । अपलक दृष्टि से देखते हुए अपने चिन्तन में संलग्न थे ।
दिन बीता सन्ध्या डली रात का अन्धेरा बढ़ने लगा वातावरण डरावना होने लगा शान्त वातावरण अशान्त हो गया चारों ओर से भूतों के रोने की अवाजें आने लगी । दुर्गन्ध फैल गई धूल का अन्धड़ चला, महावीर के नाक कान मुंह आदि धूल से भर गये । पर महावीर ने इसकी कोई परवाह नहीं की चिन्तन अविराम गति से चलता रहा, अन्धड़ की गति मन्द हो गई । लाल चींटिओं का समुदाय आ धमका, जब काटती मानों सूईया चुभ रही हैं महावीर की देह को अपना घर बना लिया । महावीर की देह सूज गई फिर भी ध्यान नहीं टूटा । अब चींटियों की जगह मधुमक्खियों ने अपना आसन जमा लिया , मजे से खून चूसने लगी, फिर मच्छर ,नेवले, साँप, बिच्छु, चूहे अनेक रुप महावीर के सामने आए और कष्ट देकर विचलित करने लगे। मानव तो क्या शैतान भी चिल्ला उठे परन्तु इन वेदनाओं से महावीर के मुख पर विषाद की रेखा भी नहीं आई, देव भी जल्दी हार मानने वाला नहीं । महावीर का ध्यान भ्रष्ट करने का प्रण कर रखा था । क्षुद्र जन्तुओ के हटते एक मस्त हाथी अन्दर घुस आया, महावीर को अपनी सूंड में दबाकर आकाश में उछाल दिया पुनः अपनी सूण्ड में झेल लिया, फिर महापिशाच की गर्जना कानो को फाड़ देने वाली फिर भी महावीर ध्यानस्थ रहे । विफल देव ने प्यार का हथियार अपनाया, परिजन महावीर को गेरे खड़े हैं, सब विलाप कर रहे है यशोदा रोती हुई प्रवेश करती है और कहती है हे नाथ क्या मेरे जीवन को बर्बाद करने के लिए मेरा हाथ

थामा था । आपके ज्येष्ठ भ्राता ने मुझे घर से निकाल दिया है अब न रहने को स्थान और न खाने को रोटी । बेचारी प्रियदर्शना का भी बुरा हाल है परन्तु इन सब का महावीर पर कोई असर न हुआ ।

नाटक का पटाश्रेप हुआ दृष्य बदल गया मौसम सुहावना हुआ एक अर्धनग्न सुन्दरी आ पहुँची उसका अनुसरण करती हुई पाँच नर्तकिया आ गई उनके पैर थिरकने लगे मधुर ध्वनि से दिशांए गूंज उठी महावीर ने आँख तक नही उठाई, एक सखी ने कहा वह है तुम्हारे हृदय का हार और गले लिपट गई मधुर स्वर में कहने लगी- हे निर्दयी देवता- क्या सुन्दरियों से ऐसा निष्ठूर व्यवहार किया जाता है . सभी चिमट गई परन्तु महावीर ध्यान में स्थिर रहे विफल होकर चली गई, देव का यह हथियार भी निष्फल हो गया ।

इतनें में एक पथिक आया भोजन बनाना था चूल्हे के लिए ईंट पत्थर नहीं मिले भगवान के दो पैरों के बीच आग जलाकर भोजन बनाया । फिर भी बात नहीं बनी तो शिकारी पक्षीयों का पिंजरा लेकर आया महावीर को स्थिर देखकर पिंजरा लटका दिया भूखे पंछी महावीर को नोच कर खाने लगे । फिर भी कोई बात नही बनी । एक जोर सा भूकम्प आया धरती काँप उठी महावीर का शरीर कमर तक जमीन में धँस गया । ध्यान आखण्ड रहा और यह दृष्य भी विलीन हो गया । कठोर धरती दिन के उजाले में आवागमन चालू हो गया साधुवेश में एक चोर पकड़ा गया उसने सिपाही से कहा मेरे गुरु ने ऐसा ही हमें सिखाया है महावीर के पास ले गया यह है मेरा गुरु आप छूट गया और सिपाही ने महावीर की खूब पिटाई की फिर भी ध्यान से विचलित नही हुए । देव

माया विफल रही । फिर 500 चोरों का काफिला आ गया और ऐसे मिला जैसे बहुत परिचित होते हैं गद्गगद स्वर में कहा- मामा आप यहां कैसे , चलो हमारे साथ जब महावीर नहीं बोले तो फांसी पर लटकाने की योजना बनाई परन्तु देव माया विफल रही और परास्त होकर निरन्तर छः महीने उपसर्ग देता रहा । महावीर शान्त भाव से सहते रहे। छः महीने न कुछ खाया न पीया देव परास्त होकर स्वर्ग को जाने लगा तो भगवान की आँखों से दो आँसू टपक गये संगम थम गया और कहने लगा अब तो तुम्हे कोई कष्ट नहीं फिर आँसू कैसे । इतने संकटो में उफ तक नहीं किया फिर आज क्या। महावीर- संगम मैं अपने संकटो से नहीं डरता आज तक जो मुझे डिगाने आया विफल विवल होकर क्षमायाचना कर गया परन्तु तुमने जो छः माह में कर्म बन्द किया कहां भूगते गा बिना क्षमायाचना के जा रहा है । यह आंसू वेदना के नहीं, दया के करुणा के आँसू हैं ।अगले दिन भगवान ने गोकुल ग्राम की वत्सपालिका गोपी के यहाँ 6 महीने का पारणा किया । देवों ने गोपी के दान की प्रशंसा की।

**कठोर अभिग्रह**

मेढ़िया ग्राम से भगवान कोशम्बी नगरी पधारे और पौष कृष्णा प्रतिपदा के दिन उन्होंने एक विकट अभिग्रह धारण किया, जो इस प्रकार है-

**“ द्रव्य से उड़द के बाकले सूप के कोने में हो, क्षेत्र से देहली के बीच खड़ी हो, काल से भिक्षा समय बीत चुका हो, भाव से राजकुमारी दासी बनी हो, हाथ में हथकड़ी और पैरों मे बेड़ी हो, मुंडित हो, आँखों में आँसू और तेले की तपस्या किये हुए**

**हो, इस प्रकार के व्यक्ति के हाथ से यदि भिक्षा मिल जाय तो लेना, अन्यथा नहीं।'**

कठोरतम प्रतिज्ञा को ग्रहण कर भगवान महावीर प्रतिदिन भिक्षार्थ कोशम्बी में जाते, वैभव प्रतिष्ठा और भवन की दृष्टि से उच्च, नीच एवं मध्यम सब प्रकार के घरों में जाते और भक्त जन भी भिक्षा देने को लालायित रहते, परन्तु कठोर अभिग्रह के कारण बिना कुछ लिए ही उल्टे पांव लौट आते। जनता इस रहस्य को समझ नहीं पा रही कि प्रतिदिन भिक्षा लिए बिना क्यों लौट जाते हैं। चार महीने बीत गये अभिग्रह पूर्ण नहीं हो रहा। भगवान को अभिग्रह किये पाँच महीने पच्चीस दिन हो गये थे। संयोगवश एक दिन भिक्षा के लिए प्रभु धन्ना श्रेष्ठी के घर गये, जहां राजकुमारी चन्दना तीन दिन से भूखी-प्यासी सूप में उड़द के बाकले लिए अपने धर्मपिता के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। सेठानी मूला ने उसका सिर मुँडवा दिया हाथकड़ी पहनाकर तलघर में बन्द कर रखा था, भगवान को आया देखकर प्रसन्न हो गई, हृदय कमल की भाँति खिल उठा, परन्तु भगवान के अभिग्रह में कुछ कमीं थी कि वह वापिस होने लगे, तभी चन्दना की आँखों मे आँसू आ गये, भगवान का अभिग्रह पूर्ण हुआ, भिक्षा ग्रहण की कि बेड़ियाँ टूट गई और आभूषणों में बदल गईं। आकाश में देव दुन्दभि बजी, पंच दिव्य प्रकट हुए। चन्दना का चिन्तातुर चित्त और अपमान सहसा चमक उठा। भगवान को केवल्य प्राप्त होने पर प्रथम शिष्या बनी और साध्वी संघ की प्रमुखा हुई।

छद्मस्थ काल में भगवान ने साढ़े बारह वर्ष में केवल तीन सौ उनावस दिन ही आहार किया, शेष दिन निर्जल तपस्या।

**केवलज्ञान**

अनउत्तर ज्ञान, अनउत्तर दर्शन. अनउत्तर चारित्र आदि गुणों से आत्मा को भावित करते हुए भगवान महावीर को साढ़े बारह वर्ष बीत गये, तेरहवें वर्ष के मध्य ग्रीष्म ऋतु के दूसरे मास एवं चतुर्थ पक्ष में वैशाख शुक्ला दशमी के दिन पिछले प्रहर में जृंभिका ग्राम नगर के बाहर ऋजुबालुका नदी के किनारे, जीर्ण उद्यान के पास, श्यामक नामक गाथापति के क्षेत्र में गोदोहिका आसन में प्रभु अतापना ले रहे थे कि केवल ज्ञान केवल दर्शन की उपलब्धि हुई। अब भगवन भाव अर्हन्त कहलाए।

**प्रथम देशना**

भगवान को केवलज्ञान होते ही देवगण पंचद्रव्यों की वृष्टि करते हुए ज्ञान की महिमा करने आए। विराट समोसरण की रचना की यह जानते हुए कि यहाँ सर्वविरति व्रत ग्रहण करने कोई योग्य नहीं है, भगवान ने कल्प समझकर कुछ काल उपदेश दिया, वहाँ मनुष्यों की उपस्थिति न होने से किसी ने चारित्र-धर्म स्वीकार नहीं किया। क्योंकि केवल देवते ही उपस्थित थे।

**इन्द्रभूति गौतम का आगमन और शंका का समाधान**

इन्द्रभूति गौतम अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ यज्ञ कर रहे थे कि पास ही थोड़ी दूरी पर देवताओं ने भगवान महावीर के समोशरण की रचना की। इन्द्रभूति के साथ ही वायु भूति,अग्निभूति आदि वेदों और पुराणों के प्रचण्ड विद्वान उस यज्ञशाला में विरामान थे कि देवतागण भगवन को समोशरण मे पधार रहे थे। विमानो को आते देखकर गोतम अपने यजमानों को कहने लगा, देखो देवतागण भी हमारे यज्ञ में पधार रहें हैं परन्तु जब विमान

आगे निकलते गये तो गोतम कहने लगा क्या देवतागण रास्ता भूल गये हैं। पता करने पर मालूम हुआ कि यह सब देवतागण भगवान महावीर के समोशरण में जा रहें है। गोतम क्रोधित होकर बोला- मुझ से अधिक ज्ञानी कौन हो सकता है ? अभी मै जाकर उसको शास्त्रार्थ में पराजित करता हूँ। गोतम अपने पाँच सो छात्रों सहित भगवान के समोशरण की ओर चल दिया- भगवान महावीर ने गोतम के आने पर कहा- इन्द्र भूति गोतम, गोतम के अभिमान ने कहा मुझे कौन नहीं जानता इसको भी मेरा नाम पता है। समवशरण में आकर इन्द्रभूति ने ज्योंहि महावीर के तेजस्वी मुख-मण्डल एव छत्रादि अतिशयों को देखा तो अत्यन्त प्रभावित हुआ। महावीर ने जब इन्द्रभूति गोतम कहकर सम्बोधित किया तो वे चकित रह गया। गोतम के मनोभावों को समझकर महावीर ने कहा-" गोतम ! मालूम होता है, तुम चिरकाल से आत्मा के विषय में शंकाशील हो।" इन्द्रभूति अपने अन्तर्मन के निगूढ़ प्रश्न को सुनकर अत्यन्त विस्मित हुआ। उन्हों ने कहा- " हां मुझे शंका है ।' महावीर की विवेचना सुनकर अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ प्रभु का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

**तीर्थ स्थापना**

इन्द्रभूति के पश्चात अग्निभूति आदि दस पण्डित भी क्रमशः आये और भगवान महावीर से अपनी शंकाओं का समाधान पाकर समस्त शिष्य मण्डली सहित दीक्षित हो गये। जो भगवान के ग्यारह गणधर कहलाए.

**केवलीवर्या में तीस वर्ष धर्म प्रभवना**

ग्रामानुग्राम विचरते हुए भगवान साधु परिवार के साथ राजगृह पधारे, उस समय वहाँ पार्श्वनाथ परम्परा के

श्रावक-श्राविका रहती थीं. भगवान नगर के बाहर गुणशील उद्यान में विराजे। वहाँ महाराजा श्रेणिक राजसी शोभा के साथ अपने अनुचरों- सम्बन्धियों के साथ वन्दना करने निकले, धर्म-देशना सुनी, श्रेणिक ने सम्यक्त्व ग्रहण किया और अभयकुमार आदि ने श्रावक –धर्म ग्रहण किया।

केशी गोतम संवाद भी हुआ और महावीर की परम्परा स्वीकार कर ली।

एक बार भगवान महावीर अपने साधु परिवार के साथ विहार कर रहे थे, कि एक बूढ़ा कृष शारीर का किसान अपने खेत में काम कर रहा था, भगवान ने गोतम स्वामी को कहा- जाओ उस किसान को बोध दो गोतम बोध देने चला गया और महावीर आगे बड़े। जब गोतम ने कृषक को बोध दिया तो उस ने श्रावक धर्म वहीं स्वीकार कर लिया। गोतम स्वामी कहने लगे-" मेरा गुरु बहुत ज्ञानी है, चलो उसके दर्शन करवाऊँ, वे मान कर गोतम स्वामी के साथ महावीर के पास आए, ज्योहि कृषक ने महावीर के दर्शन किये वह सब कुछ छोड़ कर भाग गया।" गोतम स्वामी-" भगवन् ! यह क्या ?"

महावीर ने अपने पूर्व भव की घटना सुनाई-" गोतम ! एक भव में तुम मेरे रथवान थे और मैं राजकुमार था जंगल मे एक शेर का सामना हो गया, मैंने उस शेर को जबाड़े से पकड़कर चीर दिया था, वह शेर अब कृषक के भव में है, उस समय शेर को अति वेदना हुई और मेरे प्रति द्वेष हो गया, तुम ने सन्तावना दी कोई बात नहीं तुम जंगल के राजा हो और वे नगर के राजा हैं, राजा से राजा का संग्राम हुआ है, इसलिए तेरे प्रति राग हो गया, जिससे तेरे कहना मान लिया और द्वेष के कारण मेरे से भाग गया।"

## शक्र द्वारा आयुवृद्धि की प्रार्थना

प्रभु का अन्तिम समय निकट जानकर शक्र वन्दन करने को आया और अंजलि जोड़कर बोला" भगवन् ! आपके जन्मकाल से जो उत्तराफाल्गुणी नक्षत्र था, उस पर इस समय भस्मग्रह संक्रान्त होने वाला है, जो कि जन्म-नक्षत्र से दो हजार वर्ष तक रहेगा। अतः उस संक्रमण काल तक आप आयु को बढ़ा लें तो वह निष्फल हो जाएगा। "

भगवन ने कहा-" इन्द्र! आयु को घटाने-बढ़ाने में किसी की शक्ति नहीं है। ग्रह तो केवल आगामी काल में जो शासन की गति होने वाली है, उसके दिग्दर्शक मात्र है।" इस प्रकार इन्द्र की शंका का समाधान कर भगवान ने उसे सन्तुष्ट कर दिया।

## परिनिर्वाण

कार्तिक कृष्णा आमवस्या (दिवाली)की पिछली रात्रि में निर्वाण हुआ, उस समय तक सोलह प्रहर तक प्रभु अनन्त बली होने के कारण बिना खेद प्रवचन करते रहे, अन्तिम देशना जिसे हम उत्तराध्ययन आगम की वाचना कहते है इसमें छत्तीस अध्याय है और उस समय नौ लच्छी और नौ मल्ली महाराजे वहाँ विद्यामान थे, गौतम स्वामी को देव शर्मा को प्रतिबोध देने के लिए भेज दिया. जब लौटे तो निर्वाण सुनकर खिन्न हो गये, विह्वल होकर कहने लगे भगवान् ! यह क्या? चिन्तन करते उसी रात्रि गौतम को भी केवल ज्ञान हो गया।

भगवान की अन्तिम वाणी के छत्तीस अध्याय हैं, जिनमें सर्वप्रथम है विनय। विनय को भी तपस्या माना गया है, वनीत शिष्य ही अपनी आत्मा का उत्थान कर

सकता है। इसको तुलसी दास ने भी बहुत सुन्दर शब्दों मे वर्णन किया है-

***विनय धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।***
***तुलसी दया न छोड़िये, जब तक घट नें प्राण।।***

श्रमण भगवान ने अहवान किया है, कि तुम्हारे दुःख दूर नहीं कर सकता, सब दुःख तुम्हारे अपने ही कृत-कर्म के पैदा किये हुए है और तुम आप ही इस से मुक्त हो सकते हो, मैं केवल तुम्हें रास्ता बतला सकता हूँ। साधु मार्ग के लिए तिणं णं तारेणं जो आप तरने का रास्ता अपनाए और अन्य को संसार सागर पार करने के लिए मार्ग प्रशस्त करे। यह नहीं कि-

***मूंड मुंडाये तीन गुण, सिर की मिट गई खाज,***
***खाने के लड्डु मिलें लोग कहें जी महाराज ।।***

ऐसे मुनिवर को पाप श्रमण कहा है। जो अपनी आत्मा को छोड़ अपनी प्रसिद्धि को महत्व देता है और सम्प्रदायवाद एवं परम्परावाद के गुणगान करता है । भगवान ने सामाचार पर ध्यान केन्द्रित करने का आदेश दिया है। मैं इसको कुछ शब्दों में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

***तोड़ो नफरत की जंजीरें, जिनसे जकड़े हैं पैर हमारे।***
***सोने की हैं यह तो फिर क्यों, आपस में पड़े दरारे ।।***
***अनुराग, घृणा, संघर्षण, उत्तण अधम विवेचन।***
***त्यागो भाव द्वन्द के, है त्याज्य उभय आल्म्बन।।***
***वीतराग के पथ गामी है, पावें समता विनय विवेक।***
***रागद्वेष छोड़ स्वतन्त्र, वीर उपासक हो जावें एक ।।***

पढ़ने वाले को कुछ गलत लगे तो मुझे अवगत करवाए, जिससे मैं प्रोत्साहित होकर स्वीकार करूँ। अति संक्षिप्त जीवन से हम महावीर को समझे, पहिचाने और

स्वीकारें, बस यही मेरी भावना है । ----------जय महावीर ।।

स्वतन्तर जैन 9855285970 12.11.2020